North Asian International Research Journal of Social Science & Humanities

IRJIF I.F. : 5.010

ISSN: 2454-9827 Vol. 6, Issue-11 November -2020

Index Copernicus Value: 57.07 DOI NUMBER: 10.6947/2454-9827.2020.00009.9 Citation Index

A Peer Reviewed Refereed Journal

जैन आगम साहित्य में कर्म : एक दृष्टि

-साध्वीश्री श्रुतिदर्शनाश्री

"कर्म का सिद्धान्त" यह जैनधर्म का एक अग्रगण्य सिद्धांत है। जैसे भौतिक जगत में कार्यकारण का नियम कार्य करता है, वैसे नैतिक जगत में भी कार्यकारण का नियम कार्य करता है, उसको कर्म का नियम, कर्म का सिद्धान्त कहते हैं। प्रत्येक क्रिया का फल होता है। "जैसा करोगे वैसा पाओगे।" यह भावना भारतीय संस्कृति में व्याप्त है। प्रत्येक व्यक्ति को कर्म के अनुसार शुभाशुभ फल भोगना ही पड़ता है, परन्तु यह सिद्धान्त कैसे काम करता है, यह समझना दुष्कर है।

चार अनुयोग में निरुपण- जैन साहित्य का विशाल भाग कर्म सिद्धान्त को प्रस्तुत करता है। क्योंकि कर्म का मुख्य संबंध द्रव्यानुयोग और चरण-करणानुयोग के साथ है तथा कर्म के शुभ-अशुभ विपाक दर्शाने के लिये धर्मकथानुयोग का भी कर्म से सीधा संबंध है एवं गतिणानुयोग भी कर्म सिद्धान्त के निरूपण से सर्वांशे अलिप्त नहीं।

चार्वाक दर्शन को छोड़कर अन्य सभी दर्शनों ने कर्म को मान्यता प्रदान की। हाँ, कर्म की संज्ञा में परिवर्तन हो सकता है, किन्तु किसी न किसी रूप में कर्म को सभी ने स्वीकार किया है। जैन, बौद्ध, न्याय, सांख्य, वेदान्त, वैशेषिक, मीमांसक आदि सभी दार्शनिकों ने कर्मवाद के संबंध में अनुचिंतन किया, जिसकी प्रतिछाया धर्म, साहित्य, ज्ञान, विज्ञान, कला आदि समस्त विधाओं पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। किन्तु जैन आगम साहित्य में कर्मवाद का जैसा सुव्यवस्थित वैशेषिक रूप उपलब्ध है, वैसा अन्यत्र नहीं है।

वैदिक दर्शन कर्म के विषय में बहुत ही सुंदर एक परिभाषा देता है। "कर्म ब्रह्मोदभवं विद्धि।"[1] ऐसी एक मान्यता है कि कर्म का उदय ब्रह्म से ही सम्भावित है। प्रत्येक कर्म में अपूर्व को (पुण्यापुण्य को) उत्पन्न करने की शक्ति होती है।[2]

महर्षि व्यास के गीता उपनिषद् में कर्म जीवों के भावों को उत्पन्न करने वाला विसर्ग नाम से संज्ञित हुआ है।[3]

नैयायिक का कथन है कि "कर्म अर्थात् पुण्य-पाप आत्मा के विशेष गुण हैं।" विभिन्न विचित्रता का कारण पूर्वजन्म में किये गए विभिन्न कर्म ही हैं।[4]

बौद्ध मतानुसार- विश्व के कार्य में कर्म ही कारणभूत है। जब बुद्ध के पैर में कांटा लगा, तब उन्होंने कहा था कि हे भिक्षुओ! आज से एकावनवे कल्प में मैंने छूरी से एक पुरुष का वध किया था, उसी कर्म के विपाक से आज मेरे पैर में कांटा लगा है।[5]

जैनदर्शन में कर्मग्रंथकार ने कर्म की परिभाषा इस प्रकार की है- "कीरइ जिएण हेउहिं, जेणं तो भन्नए कम्मं" (मिथ्यात्वादि) हेतुओं के द्वारा जीव से जो किया जाता है, उसे कर्म कहते हैं।[6]

जीव की प्रवृत्ति के द्वारा जो सूक्ष्म पुद्गल (कर्मवर्गणा) जीव की ओर आकर्षाकर चोटते हैं, वह कर्म पौद्गलिक द्रव्यरूप है। कर्म मूर्त है और आत्मा अमूर्त है। इस परिस्थिति में मूर्त (कर्म) द्वारा अमूर्त (आत्मा) का उपघात उपकार किस प्रकार हो सकता है?[7]

जैसे ज्ञान आदि अमूर्त्त होने हुए भी विष, मदिरादि वस्तुओं द्वारा उसका उपघात होता है तथा घी, दूधादि पौष्टिक पदार्थों द्वारा उसका उपकार होता है। उसी प्रकार आत्मा अमूर्त्त होते हुए भी कर्म द्वारा उसका उपघात व उपकार होता है। संसारी आत्मा एकांतपने अमूर्त्त नहीं है। आत्मा का कर्म पुद्गलों के साथ का संबंध अनादि होते हुए भी शांत है।[8]

आत्मा स्वभाव से अमूर्त्त है, परन्तु पौद्गलिक कर्म के साथ उसका नीर क्षीर जैसा संबंध अनादि होने से संसारी अवस्थायें उसको कथंचित् मूर्त मानने में आता है। आत्मा का कर्म के साथ संबंध होने से आत्मा की चार प्रकार की मुख्य अवस्था होती है- औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और औदयिक। कर्म के उपशम से उत्पन्न होने वाली औपशमिक, कर्म के क्षय से उत्पन्न होने से क्षायिक, कर्म के क्षय और उपशम से उत्पन्न होने वाली क्षायोपशमिक और कर्म के उदय से पैदा होने वाली औदयिक। इसके उपरांत पांचवां भाव पारिणामिक है, जो आत्मा का स्वाभाविक परिणमन ही है।[9]

कर्मवाद के आगमिक संदर्भ

भगवती सूत्र- प्रश्न- कइ णं भंते अणुभागो करविहो कस्स?[10] कर्म प्रकृतियाँ कितनी हैं?

कर्म प्रकृतियाँ आठ हैं। यथा- (1) ज्ञानावरणीय, (2) दर्शनावरणीय, (3) वेदनीय, (4) मोहनीय, (5) आयु, (6) नाम, (7) गोत्र और (8) अन्तराय।

जीव कर्म प्रकृतियों को किस प्रकार बांधता है?

कर्म ही कर्म को बांधता है अर्थात् जिस जीव में कर्म है, उसी को कर्म का बंध होता है। जिस जीव में कर्म नहीं है, उसको कर्म का बन्ध नहीं होता है। आत्मा कर्मों का कर्त्ता है और अनादिकाल से वह कर्मों का उपार्जन कर रहा है। नदी के जल के प्रवाह के समान कर्म आते-जाते रहते हैं।

श्री भगवती सार- इसके पृष्ठ 452-482 में कर्म विषयक चर्चाएँ हैं।[11]

मुक्त जीव को कर्म नहीं लगते हैं। संसारी जीवों को ही कर्म का बंधन होता है, क्योंकि संसारी जीव में राग-द्वेष की चिकनाहट रही हुई है। जिस प्रकार रजकण जड़ होने पर भी चिकने वस्त्रों पर चिपक जाते हैं, उसी प्रकार कर्म रूपी रजकण जड़ होने पर भी राग-द्वेष की चिकनाई से युक्त आत्मा पर चिपक जाते हैं।

अतः राग-द्वेष से रहित आत्मा ही कर्मबंध से मुक्त हो सकती है एवं परम पद को प्राप्त कर सकती है।

इस प्रकार आठ मूल प्रकृतियों के नाम- सहसत्ता, समकाले आठ, सात के छह प्रकृतियों का बंध, मूल प्रकृतियों की जघन्य तथा उत्कृष्ट स्थिति उसी प्रकार प्रत्येक का अबाधा-काल और निषेक-काल, संयम, दृष्टि, संज्ञा, भव्यत्व, दर्शन, पर्याप्ति, भाषकत्व, परित्तज्ञान, योग, उपयोग, आहार, सूक्ष्मता और चरमता की अपेक्षा

से विचारणा, भूत, वर्तमान और भविष्य काल के कर्मों का भेद, कर्म के वर्णादि सारों, कषायों की पर्यायें, बंध आयुष्य संबंधी अजैन मंतव्यादि उसी प्रकार कर्कश वेदनीय और अकर्कश वेदनीय कर्म के बंध के कारण आदि कर्म विषयक महत्त्वपूर्ण जानकारी इस पंचम अंग व्याख्या प्रज्ञप्ति में दर्शाई गई है।

औपपातिक आगम में कर्मवाद- जीवेणं भंते! असंजाए अविरए हंता अण्हाइ।।1।। जिसने संयम नहीं साधा, प्राणातिपातादि से निवृत्ति नहीं की, अविरत् वास्तविक श्रद्धान के द्वारा पाप कर्मों को हल्के नहीं किये- 'अप्रतिहत सर्वविरति' - सम्पूर्ण त्याग वृत्ति से आते हुए पाप कर्मों को हल्के नहीं किये, जो कायिकी आदि क्रिया से युक्त है, जिसने इन्द्रियों का विरोध नहीं किया, जो स्व-पर को सर्वथा पापकर्म से दण्डित करता है, सर्वथा मिथ्यादृष्टि है, वह जीव पापकर्म से लिप्त होता है? हाँ होता है।

असंयत आदि विशेषणों से युक्त जीव का एक क्षण के लिए भी कर्मबंध नहीं रुकता है।[12]

इस उपांग से कर्म के व्युत्सर्ग के आठों प्रकारों, नरक को भोगते हुए मोहनीय का बंधादि विषय इसके अन्तर्गत है।

समवायांग आगम में कर्मवाद-

चत्तारि कसाया पण्णत्ता..... करिस्संति।।4।।

जो शुद्ध स्वरूप वाली आत्मा को कलुषित करता है अर्थात् 'कर्ममल' से मलिन करता है, उसे कषाय कहते हैं। अथवा कष अर्थात् कर्म या संसार की आय अर्थात् प्राप्ति या वृद्धि जिससे हो, वह कषाय है।

बन्ध- जिसके द्वारा कर्म और आत्मा क्षीर व नीर की तरह एक रूप हो जाते हैं, उसे बन्ध कहते हैं। वह बंध चार प्रकार का है। यथा-

(1) प्रकृतिबन्ध- कर्म पुद्गलों का भिन्न-भिन्न स्वभाव।

(2) स्थिति बन्ध- कर्म पुद्गल की जीव के साथ रहने की काल मर्यादा।

(3) अनुभाव बन्ध- कर्म पुद्गलों की फल देने की शक्ति का न्यूनाधिक होना, इसे अनुभव बन्ध और अनुभाग बन्ध भी कहते हैं।

(4) प्रदेश बन्ध- जीव के साथ कर्म पुद्गलों का न्यूनाधिक परिणाम में सम्बन्ध होना।[13]

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग के निमित्त से अनन्त-अनन्त कर्म वर्गणा आत्मा के एक-एक प्रदेश के साथ बन्ध जाता है, उसे बन्ध कहते हैं।

छलेसाओ..... सव्व दुक्खाणमंतं करिस्संति।।6।।

तप- शरीर और कर्मों को तपाना तप है। जैसे अग्नि में तपा हुआ सोना निर्मल होकर शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार तप रूपी अग्नि में तपा हुआ आत्मा कर्ममल से रहित होकर शुद्ध स्वरूप हो जाता है।[14]

यह अंग संख्या प्रधान है। इसलिये सूत्रों के क्रमांक प्रमाण विषय बताए हैं। कर्म विषय निरन्तर और व्यवस्थित चित्र का रूपांतर पृ.56-92 में तथा कर्म विषयक टिप्पण पृ.92-106 में निम्नलिखित विषय दर्शाये गए हैं-

कर्म विषय में बौद्ध मान्यता, प्रकृति बंध, अल्प बहुत्व, अनुबंध और विपाक, अबाधा और निषेक, सुख-दुःख के संवेदन संबंधी बौद्ध मंतव्य और 14 गुणस्थानकादि दर्शाए हैं।

सूयगडांग सूत्र में कर्मवाद-

जमिणं जगती पुढो ..... मुच्चेज्जऽपुट्ठयं।।

जो जीव सावद्य कर्मों का अनुष्ठान नहीं छोड़ते हैं, वे प्राणी अपने किये हुए कर्म का फल भोगने के लिए नरकादि यातना स्थानों में जाते हैं। वे अपने कर्मों का फल भोगे बिना मुक्त नहीं हो सकते हैं।[15]

जइ वि.....णंतसो।।9।।

जो पुरुष कषायों से युक्त है, वह चाहे नंगा और कृश होकर विचरे अथवा एक मास के पश्चात् भोजन करे, परन्तु वह अनन्तकाल तक गर्भवास को ही प्राप्त करता है। क्योंकि कषायों से कर्म बन्ध होता है और जब तक कर्मबन्ध से छुटकारा नहीं होगा, तब तक मुक्ति नहीं होगी।[16]

विपाकसूत्र में कर्मवाद- इस आगम में कर्मफल का वर्णन है। कर्मफल भी दो प्रकार का होता है- सुखरूप और दुःखरूप।

विपाकसूत्र के दो विभाग-श्रुत स्कंध हैं- (1) दुःख विपाक और (2) सुख विपाक। दुःख विपाक में दुःखरूप फल का और सुख विपाक में सुख रूप फल का वर्णन है। दुःख विपाक के दस अध्ययन हैं। इनमें ऐसे दस व्यक्तियों का जीवन वृत्तान्त है, जिन्होंने पूर्वजन्म में अशुभ कर्मों का उपार्जन किया था एवं सुख विपाक के भी दस अध्ययन हैं। इनमें दस ऐसे व्यक्तियों का जीवन वृत्तान्त है, जिन्होंने पूर्वजन्म में शुभ कर्मों का उपार्जन किया था।

उत्तराध्ययन आगम में कर्मवाद- इस मूल सूत्र के 33वें, 34वें एवं 36वें इन तीन अध्ययनों में अनुक्रम से कर्म प्रकृति, लेश्या और जीवाजीव विभक्ति के बारे में वर्णन है।

अट्ठकम्माइं वोच्छाठामि.....संसारे परिवट्टइ।।1।।[18]

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामी से कहते हैं कि मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय और योगों के द्वारा जीव जिनको करता है, उन्हें कर्म कहते हैं। वे ज्ञानावरणीयादि आठ हैं तथा इनके उत्तरभेद 158 हैं।

शास्त्रवार्ता समुच्चय में कर्म के संबंध में विभिन्न मत मतान्तर दर्शाकर जिन प्रणीत कर्म सिद्धान्तों को बताकर उसकी सिद्धि की गई है।

आत्मत्वेनाविशिष्टस्य.....कर्म संज्ञितम् ।।9।।[19]

यद्यपि सभी आत्माओं में आत्मपन समान रूप से वर्तमान है, फिर भी कोई आत्मा मनुष्यरूप धारी है, कोई अन्य रूपधारी, यह परिस्थिति जिस तत्त्व के फलस्वरूप उत्पन्न होती है, वही आत्माओं का अपना-अपना अदृष्ट-नामान्तर कर्म है।

जगत की विषमता का कारण कर्म और आत्मा का अनादि संबंध है। अतः जगत भी अनादि है। जब तक जीव के पूर्वोपार्जित समस्त कर्मों का क्षय नहीं हो जाता एवं नवीन कर्मों का आस्रव बन्द नहीं हो जाता, तब तक उसकी भवबन्धन से मुक्ति न हीं होती है। एक बार समस्त कर्मों का क्षय हो जाने पर पुनः कर्मोपार्जन नहीं होता है, क्योंकि कर्मबन्ध का कोई कारण विद्यमान न हीं रहता है। आत्मा की इस अवस्था को मोक्ष, मुक्ति निर्वाण या सिद्धि कहते हैं।[20]

संदर्भ सूची

1. श्रीमद् भगवत गीता, 8/12
2. तन्त्रवार्तिक, पृष्ठ 395
3. षड्दर्शन समुच्चय, कारिका, 76वीं टीका, पृष्ठ 445-448
4. न्यायसूत्र, 3.2.60
5. अभिधर्म कोश, 4.120
6. कर्मविपाकनामा, प्रथम कर्मग्रंथ, देवेन्द्रसूरि रचित, 1/1
7. आचारांग प्रथम श्रुतस्कंध, प्रथम उद्देशक 'अप्पणो अत्थित्तपद'
8. विशेषावश्यक भाष्य, गाथा 1637-38
9. तत्त्वार्थ सूत्र, 2.1
10. भगवतीसूत्र, पृष्ठ 203, 204, सुधर्मस्वामी, वि.सं.1979, सनातन जैन मुद्रणालीय, राजकोट
11. श्री भगवती सार, पृ.452-482, संपादन गोालदास जीवभाई पटेल, जैन साहित्य प्रकाशन समिति, अहमदाबाद, 1938
12. उववाइयसूत्र, पृ.138,139, सं.नेमिचन्द बाठिया, अ.भा.सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर
13. समवायांग सूत्र 4/4, पृष्ठ 17, 25, सं.मधुकर मुनि, सन् 1962, ब्यावर राजस्थान
14. स्थानांग-समवायांग, पृष्ठ 56-92, सं.श्री दलसुख मालवणिया 'गुजरात विद्यापीठ', अहमदबाद, ई.सन् 1955
15. समवायांग सूत्र, पृष्ठ 61
16. सूयगडांग सूत्र, भाग-1, अध्याय 23, सूत्र 4, पृष्ठ 7, सं.मधुकर मुनि, जैन अगम प्रकाशन समिति, ब्यावर
17. विपाकसूत्र, प्रस्तावना, पृष्ठ 2, सं.छगनलाल शास्त्री, श्री अ.भा.सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर-ब्यावर
18. उत्तराध्ययन सूत्र, 2/1, सं.मिश्रीमलजी म. मधुकर, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, वि.सं.2056
19. शास्त्रवार्ता समुच्चय, 1/91, हरिभद्रसूरि, सं.कृष्णकुमार दीक्षित, गीताप्रेस गोरखपुर, अहमदाबाद, ई.स.2002
20. षड्दर्शनसमुच्चय, हरिभद्रसूरि रचित, भावानुवाद - संयमकीर्तिविजयजी, भाग-1, पृष्ठ 498, परिशिष्ट-3

सम्पर्क सूत्र
साध्वीश्री श्रुतिदर्शनाश्री
C/o श्री प्रकाशचन्द्र गादिया
127, चौंसठ योगिनी मार्ग, नयापुरा,
उज्जैन - 456006 (म.प्र.)
मोबा. 6261563503